International Journal of Humanities and Social Science Research
ISSN: 2455-2070; Impact Factor: RJIF 5.22
www.socialresearchjournals.com
Volume 2; Issue 11; November 2016; Page No. 70-75

मौर्य काल में पर्यावरण संरक्षण : एक ऐतिहासिक दृष्टिकोण

[1] डॉ0 प्रेम बहादुर, [2] प्रो0 डी0पी0 सकलानीं

[1] अतिथि शिक्षक, इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, हे0न0ब0ग0वि0वि0 श्रीनगर, गढ़वाल, उत्तराखण्ड, भारत।

[2] प्रोफेसर, इतिहास एवं पुरातत्व विभाग, हे0न0ब0ग0वि0वि0 श्रीनगर, गढ़वाल, उत्तराखण्ड, भारत।

सारांश

आदिकाल से ही मानव अन्य जीव–जन्तुओं की अपेक्षा अपनी प्राकृतिक शक्ति एवं विशिष्टता को समझने में लगा है। वह अपने उत्पत्ति के रहस्यों के साथ–ही–साथ प्राकृतिक रहस्यों को जानने का भी प्रयास करता आ रहा है। विश्व के समस्त धर्मों में ही नहीं अपितु विज्ञान, कला एवं साहित्य आदि विधाओं में भी जीव, जगत् और मानव की उत्पत्ति एवं विकास पर प्रारम्भ से ही गहन चिन्तन, मनन एवं अध्ययन किया जा रहा है। इतिहास को समस्त विषयों का 'सार' कहा जा सकता है क्योंकि इसमें समस्त विधायें समाहित हैं। लगभग विश्व के सभी धर्म जीव की उत्पत्ति का मूल कारण ईश्वर को मानते हैं जो मूलतः कोई अदृश्य पारलौकिक सत्ता न होकर प्रकृति ही है। प्रकृति ही समस्त भौतिक जगत की उत्पत्ति का मूल कारण है। इतिहास का मूल विषय इन्हीं भौतिक कारकों में उत्पन्न हुए मानवीय क्रिया कलापों का अध्ययन है। इस प्रकार इतिहास अतीत के कृत्यों का क्रमबद्ध वैज्ञानिक अध्ययन है साथ–ही–साथ प्रकृति प्रदत्त सर्वाधिक अमूल्य निधि मानव के उत्पत्ति, विकास, क्रिया–कलाप, उत्थान एवं पतन का क्रमबद्ध अध्ययन भी करता है। मौर्य युग प्रथम राजतन्त्रात्मक शासन प्रणाली है जिसमें प्रत्यक्षतः प्रकृति एवं पर्यावरण संरक्षण पर विषेश ध्यान दिया गया है जिसका साक्ष्य कौटिल्य के अर्थशास्त्र में स्पष्टतः परिलक्षित होता है।

मूल शब्दः अर्थशास्त्र, चन्द्रगुप्त मौर्य, बिन्दुसार, अशोक, अभिलेख, गूढ़पुरुष, कौटिल्य।

प्रस्तावना

महान यूनानी दार्शनिक अरस्तू[1] (384–322 ई0पू0) के स्वतः जनन वाद सिद्धान्त के अनुसार जीव–जन्तु स्वतः उत्पन्न होते हैं जैसे सड़े हुए मांस से छोटे–छोटे कीड़े व मक्खियां आदि जिनका मूल प्रकृति एवं पर्यावरण है तथा इस प्रक्रिया में रासायनिक परिवर्तन का भी योगदान होता है, घटित होने के पश्चात् से ऐसी घटनायें भी इतिहास का विषयवस्तु बन जाती हैं। फ्रांसीसी नृतत्वशास्त्री जॉन लैमार्क[2] ने अपनी पुस्तक 'फिलॉसफी ऑफ जुओलॉजी' में जीव की रचना–परिवर्तन–प्रक्रिया में वातावरण एवं पर्यावरण के प्रभावों को महत्वपूर्ण कारक के रूप में स्वीकार किया है। इसी प्रकार ब्रिटिश वैज्ञानिक डार्विन[3] का मानना है कि प्रकृति में जीवों के पोषण के साधन सीमित मात्रा में हैं किन्तु उसमें मानव जैसे विचारशील प्राणी का हस्तक्षेप बढ़ जाता है तो उसका नकारात्मक प्रभाव हमारे पर्यावरण एवं वातावरण पर पड़ता है।

'पर्यावरण' शब्द 'परि' उपसर्ग के साथ 'आवरण' शब्द के संयोग से बना है। 'परि' का अर्थ चारों ओर और आवरण का अर्थ आच्छादन या घेरा है। इस प्रकार पर्यावरण; आकाश, जल, वायु, पृथ्वी, अग्नि, वनस्पति, पेड़–पौधे, वन्यजीव, प्रकाश, नदी, तालाब, झील, समुद्र, पशु–पक्षी, पर्वत, पहाड़, जीव–जन्तु, मनुष्य आदि का समुच्चय है। ए0 एन0 पुरोहित के अनुसार ''पर्यावरण विभिन्न आत्मनिर्भर घटकों– सजीव एवं निर्जीव के मध्य सामंजस्य एवं पूर्णता (प्रकृति) की अवधारणा है।[4]'' मनुष्य अन्य जीव–जन्तुओं की अपेक्षा सर्वाधिक सजग एवं चिन्तनशील प्राणी है। इस चिन्तनशीलता ने मानव को पर्यावरण की सुरक्षा हेतु उत्प्रेरित किया।

जैन ग्रन्थ भगवती सूत्र एवं बौद्ध ग्रन्थ अंगुत्तर निकाय से पता चलता है कि छठी शती ई0पू0 षोडष महाजनपदों में से मगध अपने प्राकृतिक भौगोलिक स्थिति के कारण सर्वाधिक महत्वपूर्ण राज्य के रूप में उपस्थिति दर्ज की। किन्तु पाटलिपुत्र नगर का उदय पौराणिक काल में हुआ था।[5] जैन ग्रन्थों के अनुसार पाटलिपुत्र नगर को वाह्य आक्रमण से सुरक्षा के लिए जिन हथियारों का प्रयोग किया जाता था उन्हें 'महाशिला कंटक' और 'रथ मूसल' कहा गया है।[6] महाशिला कंटक की सहायता से बड़े–बड़े पत्थरों को दूर तक फेंका जाता था जबकि रथ मूसल विना सारथी के पहिये में लगी तलवारों द्वारा शत्रु सेना का विनाश करती थी।[7] इससे यह स्पष्ट होता है कि उस समय युद्ध के समय भी पर्यावरण को ध्यान में रखते हुए हथियारों का चुनाव किया जाता था। और ऐसे हथियारों का चुनाव किया जाता था जिससे कम से कम प्राकृतिक तत्व प्रदूषित एवं प्रभावित हों। सम्राट अशोक ने बौद्ध धर्म स्वीकार कर अपने अनेक शिला लेखों में से एक पर लिखा है कि '' सारे विश्व के कल्याण से अच्छा कर्तव्य कोई नहीं है यदि मैं ऐसा नहीं करता हूँ तो मेरा जीवन निरर्थक है मैं चाहता हूँ कि जीव के प्रति मानव अपनें कर्तव्य से पथभ्रष्ट न हों जिससे कि लोगों को सुख पहुँचे और वे स्वर्ग में भी सुख की प्राप्ति करें।''[8] अशोक के स्तम्भ पर लिखित आदर्श वाक्य 'सत्यमेव जयते' संभवतः इसी प्राकृतिक एवं पर्यावरणीय सत्यता का द्योतक है जिसके माध्यम से यह बताने का प्रयास किया गया है कि प्रकृति के समस्त तत्वों यथा–क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर आदि पंच प्राकृतिक तत्वों के साथ ही भौतिक तत्व यथा– पहाड़, नदी, पर्वत जंगल, पशु–पक्षी, पेड़–पौधे, और जीव–जन्तु आदि सभी तत्वों की जय हो, समस्त तत्वों का संरक्षण हो जिससे सकारात्मक उर्जा की उत्पति द्वारा समस्त ब्रह्माण्ड का कल्याण हो।

जैनाचार्य इस तथ्य से भली–भॉति परिचित थे कि प्रत्येक प्राणी को अपने अस्तित्व का खतरा है। अहिंसा और पर्यावरण उन्हें इस खतरे से बचा लेते हैं।[9] इस प्रकार कहा जा सकता है कि पर्यावरण और अहिंसा समानार्थक शब्द है क्योंकि बिना अहिंसा के पर्यावरण की सुरक्षा एवं प्रदूषण की रोकथाम दोनों ही असम्भव हो जायेगा। जैनाचार्य पर्यावरण के प्रति अत्यन्त सजग दिखायी पड़ते हैं क्योंकि जैन धर्म में अहिंसा के दो रूपों की ब्याख्या प्रस्तुत की गयी है

यथा– प्रथम निषेधात्मक[10] रूप जिसमें षट्काय जीवों की हिंसा न करनें का निर्देश दिया गया है, द्वितीय विधेयात्मक[11] रूप जिसमें जीवों पर दया करना तथा अभय दान देने आदि का निर्देश दिया गया है। जैन धर्म में पृथ्वी, अप, तेज, वायु, वनस्पति, और त्रस को षट्काय जीव की संज्ञा दी गयी है। बौद्ध धर्म के मलवग्गो[12] में कहा गया है कि जो जीव हिंसा करता है, झूठ बोलता है, चोरी करता है, शराब पीता है वह इस संसार में अपनी ही जड़ खोदता है। इसी प्रकार धम्मट्ठवग्गो[13] में कहा गया है कि प्राणियों की हिंसा करने से कोई आर्य (श्रेष्ठ) नहीं होता बल्कि प्राणियों की हिंसा न करने वाले को आर्य कहा जाता है। बौद्ध धर्म में कृषि कार्यों तथा इससे संबंधित अन्य क्रिया कलापों[14] जैसे–खुदाई, खेतों की जुताई, सिंचाई, फसलों, घास और वृक्षों की कटाई, तथा एक इंद्रिय जीवों, जो पौधों, वृक्षों, मिट्टी आदि में निवास करते थे, को नष्ट किये जाने जैसे कृत्यों को हिंसा की श्रेणी में रखा गया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि जैन एवं बौद्ध कालीन समाज के लोग पर्यावरण की सुरक्षा के प्रति अत्यन्त संवेदनशील थे जिसका विस्तार हमें आगे चलकर मौर्य कालीन समाज में स्पष्टतः परिलक्षित होता है।

अर्थशास्त्र

कौटिल्य के अर्थशास्त्र से पता चलता है कि मौर्य कालीन समाज एक अत्यन्त सजग समाज था। मौर्य शासकों के साथ ही साथ तत्कालीन सामान्य जन भी पर्यावरण संरक्षण के प्रति अत्यन्त संवेदनशील थे। अर्थशास्त्र में कहा गया है कि ऊसर भूमि में पशुओं के लिए चारागाहें बनवानी चाहिए।[15] इससे स्पष्ट होता है कि शासकों द्वारा निर्देशित यह व्यवस्था आम जन तक को प्रभावित करती थी जिससे आम जन द्वारा भूमि सुधार का कार्य मौर्य काल में अत्यन्त तीव्र गति से सम्पन्न हुआ। इस कार्य से जहॉ एक तरफ भूमि को उपजाऊ बनाकर बगैर पर्यावरण को क्षति पहुॅचाए कृषि कार्य द्वारा अर्थव्यवस्था को मजबूती प्रदान की गयी वहीं दूसरी तरफ वनों द्वारा पशु–पक्षियों के संवर्द्धन एवं संरक्षण का कार्य भी किया गया। वनों के वृद्धि एवं संरक्षण के साथ–साथ वनों में उत्पन्न होने वाले अनेक व्याघ्र, सॉप, विच्छू, राक्षस, आदि विशैले जानवरों से व्यक्ति तथा अन्य जीव–जन्तुओं की सुरक्षा की बात भी अर्थशास्त्र में कही गयी है।[16] अग्नि, जल, बीमारी, दुर्भिक्ष, चूहे, व्याघ्र, सॉप और राक्षस आदि आठ[17] दैवीय आपत्तियों से प्रजा की रक्षा हेतु राजा को निर्देशित किया गया है। 'आशुमृतकपरीक्षा'[18] में इस बात का वर्णन है कि यदि किसी व्यक्ति की बिना किसी बीमारी या घाव के ही अचानक मृत्यु हो जाय तो उसकी मृत्यु के कारण की जानकारी भी मिलनी चाहिए। इस हेतु दण्ड विधान की व्यवस्था भी अर्थशास्त्र में की गयी है। इससे यह स्पष्ट होता है कि अर्थशास्त्र में प्रकृति एवं पर्यावरण की सुरक्षा हेतु जिन विधि–विधानों का निर्देश दिया गया है उससे राज्य के राजा के साथ–ही–साथ आम जन भी बॅधे हुए थे क्योंकि इन कार्यों में जो आम–जन या विशिष्ट जन संलग्न थे उन्हें पारितोषिक रूप में भरण–पोषण का विधान भी 'भृत्यभरणीयम्' नामक प्रकरण में उल्लिखित है जिसमें कहा गया है कि ''राज्य की आय का चौथा भाग भृत्यों के भरण–पोषण पर व्यय किया जाय।[19]'' गिरिनार शिलालेख[20] के माध्यम से सम्राट अशोक यह आदेश देता है कि गुप्तचरों की उस तक पहुॅच हमेशा होनी चाहिए, चाहे वह भोजन कर रहा हो, आराम कर रहा हो, पशुशाला में हो या उद्यान में हो। मौर्य कालीन गुप्तचर व्यवस्था जिन्हें अर्थशास्त्र में 'गूढ़पुरुष' कहा गया है को अधिकारियों एवं कर्मचारियों तथा आम जन के क्रिया–कलापों की गुप–चुप जानकारी प्राप्त करने हेतु राज्य द्वारा ऐसे व्यक्तियों को लगाया गया था जिन्हें विभिन्न कोर्यों में संलग्नित व्यक्ति नहीं जानता था। इनका सीधा सम्बन्ध राजा से था। अर्थशास्त्र के 'गूढपुरुषप्रणिधि' में कहा गया है कि ''राजा का सम्बन्धी न होते हुए भी जिनका पालन–पोषण राजा के लिए आवश्यक हो, जो सामुद्रिक विद्या, ज्योतिष, व्याकरण आदि अंगों का शुभाशुभ फल बताने वाली विद्या; वशीकरण, इन्द्रजाल, धर्मशास्त्र, शकुलशास्त्र, पक्षिशास्त्र, कामशास्त्र तथा तत्सम्बन्धी नाचने–गाने की कला में निपुण हों वे 'सत्री' (संचार) कहलाते हैं।''[21] गौरतलब है कि मौर्य काल में 'संस्था' एवं 'संचार' नामक दो प्रकार के गुप्तचरों की व्यवस्था राज्य द्वारा की गयी थी। इससे यह स्पष्ट होता है कि मौर्य साम्राज्य में शासन एवं प्रशासन के साथ–साथ प्राकृतिक तत्वों यथा पहाड़, जंगल, नदी, तालाब, पशु, पक्षी, तथा जीव–जन्तु का भी संवर्द्धन एवं संरक्षण को विशेष ध्यान दिया जाता था जिसका वर्णन हमें अर्थशास्त्र में मिलता है।

तीसरी शती ई0पू0 के महास्थान लेख के आधार पर भण्डारकर का कहना है कि मौर्य कालीन किसी शासक ने पुण्ड्रवर्धन में स्थित अपने महामात्र को आदेश दिया था कि पुण्ड्रवर्धन के लोगों को दुर्भिक्ष की विपदा से निपटने के लिए राज्य द्वारा उन्हें धन एवं अन्न मुहैया कराया जाय, जिन्हें अभिलेख में संवंगीय कहकर संबोधित किया गया है।[22] इससे यह स्पष्ट होता है कि प्राकृतिक आपदाओं की जानकारी राज्य को पहले से ही हुआ करती थी जिससे निपटने के लिए राज्य द्वारा आकष्मिक निधि की व्यवस्था की गयी थी। इससे इस बात का भी अनुमान लगाया जा सकता है कि तत्कालीन समय में मौसम विज्ञान की जानकारी प्राप्त करने की तकनीकि उन्हें ज्ञात थी और तत्कालीन शासक मौसम परिवर्तन के प्रति अत्यन्त सजग थे तथा राज्य के कोष्ठागार को आपातकाल के समय सुरक्षा कवच के रूप में प्रयोग करते थे। अर्थशास्त्र में भी कहा गया है कि दुर्भिक्ष एवं प्राकृतिक आपदा के समय राजा अनाज एवं भोजन देकर जनता के प्रति अनुग्रह प्रदान करे।[23] मेगस्थनीज लिखता है कि ''राजा आपातकाल के समय अपनी प्रजा के लिए अपने असाधारण शक्तियों को प्रयोग करता था। दुर्भिक्ष आदि के समय राजा अपनी प्रजा के निवास के लिए ऐसे किसी समुद्र तटवर्ती प्रदेश या देश में भेज सकता है जहॉ बहुत सी झीलें तथा तालाब हों जिससे कृषि कार्य संभव हो सके।''[24] पतंजलि ने कहा है कि मौर्य कालीन लोग संकट के समय देवताओं की मूर्तियां बनाकर बेचते थे और उससे लाभ कमाते थे।[25] इससे यह स्पष्ट होता है कि दुर्भिक्ष के समय जहॉ एक तरफ तत्कालीन लोगों ने राजस्व प्राप्ति का असाधारण उपाय खोजा था वहीं दूसरी तरफ इन मूर्तियों के पूजा–पाठ द्वारा पर्यावरण शुद्धि का कार्य भी सम्पन्न किया करते थे। जिससे असंतुलित वातावरण संतुलित हो सके।

चन्द्रगुप्त मौर्य

चन्द्रगुप्त मौर्य भारत के महानतम सम्राटों में से एक था जिसका साम्राज्य सिंन्धु के मुहाने से लेकर गंगा के मुहाने तक विस्तृत था।[26] पंजाब और सिंध से यवन सेनाओं को भगाने के पश्चात् चन्द्रगुप्त स्वयं उस प्रान्त का स्वामी बन गया। तत्पश्चात् 322 ई0पू0 के आस–पास नन्द वंश को समूल नष्ट करके मगध के सिंहासन पर सिंहासनारूढ़ हुआ[27] और बिखरी हुई शासन सत्ता को एकता के सूत्र में बॉधकर केद्रियकृत शासन प्रणाली को साम्राज्य में लागू किया। उसके पश्चात् उसका पुत्र विन्दुसार मौर्य सिंहासन पर बैठा। अत्यल्प साक्ष्य के आधार पर कहा जाता है कि उसने अपने पिता के विशाल साम्राज्य को अक्षुष्ण बनाये रखा। तत्पश्चात् उसका सुयोग्य पुत्र उस विशाल साम्राज्य का उत्तराधिकारी बना जो विश्व के महानतम सम्राटों में सर्वोपरि था। निःसन्देह उसका काल मौर्य काल का स्वर्णकाल था जिसने भौतिक शासन के साथ–साथ आध्यात्मिक शासन का भी सूत्रपात किया। पुराणों के अनुसार अशोक के पश्चात् मौर्य साम्राज्य पर 9 या 10 राजाओं ने शासन किया जिनका इतिहास अत्यन्त धूमिल है। ऐतिहासिक दृष्टि

से मौर्य काल का सर्वाधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थ कौटिल्य के अर्थशास्त्र को माना जाता है जिसके माध्यम से मौर्य कालीन पर्यावरणीय दृष्टिकोण पर महत्वपूर्ण प्रकाश डाला गया है। विदेशी स्रोतों में मेगस्थनीज की इण्डिका मौर्य–इतिहास की महत्वपूर्ण जानकारी प्रदान करता है जो अब अपने मूल रूप में उपलब्ध नहीं है। इनके अतिरिक्त पुराण, विशाखदत्त कृत मुद्राराक्षस, दीपवंश, महावंश, दिव्यावदान आदि ग्रन्थों से जो महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है उससे स्पष्ट होता है कि मौर्य कालीन शासक पर्यावरण के प्रति अत्यन्त सजग एवं सक्रिय थे।

चन्द्रगुप्त मौर्य जन्म से ही प्रकृति एवं पर्यावरण के अत्यन्त नजदीक था तथा भौगोलिक एवं प्राकृतिक परिस्थितियों को बखूबी समझता था क्योंकि उसका पालन–पोषण प्राकृतिक परिवेश में ही हुआ था। यदि जस्टिन, जैनग्रन्थ परिशिष्टपर्वन, बौद्धग्रन्थ महाबोधिवंश एवं महापरिनिर्वाणसुत्त आदि द्वारा उल्लिखित मौरिय, मौरेय या मोरिय आदि शब्दों का अर्थ यदि 'मोर नामक पक्षी' या वह प्राकृतिक या भौगौलिक परिवेश जहॉ मोरों के निवास स्थान से है तो निश्चित रूप से वह स्थान प्राकृतिक सम्पदा यथा जंगल, झाड़ी, पेड़–पौधों, नदी, तालाब, हरियाली, तथा उर्वर जमीन से परिपूर्ण रहा होगा और वहॉ जैवविविधता रही होगी। क्योंकि इस पक्षी के विकास हेतु ऐसे ही परिवेश की आवश्यकता पड़ती है। इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता है कि भारत की भौगोलिक परिस्थिति, उपजाऊ जमीन एवं प्राकृतिक संम्पदा ने ही विदेशी आक्रान्ताओं को आकर्षित किया था। हमारी प्राचीन कालीन अर्थव्यवस्था भी प्राकृतिक सम्पदा एवं कृषि पर निर्भर थी। पुनः कौटिल्य के सहयोग से चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा स्थापित मौर्य साम्राज्य की सीमाये नदी, पर्वत आदि के माध्यम से ही निर्धारित की गयी थी। जस्टिन ने कहा है कि ''सिकन्दर के भय से भागते हुए सैन्ड्रोकोट्टस को थकने के कारण नींद आ गयी और वह सो गया एक सिंह आकर उसके पसीने को जीभ से चाटने लगा जिससे उसकी नींद खुल गयी तो वह सिंह बिना कोई क्षति पहॅचाये वहॉ से चला गया।''[28] इससे यह स्पष्ट होता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य उन मासांहारी जानवरों के भी अत्यन्त नजदीक था जो सामान्यतया हिंसक ही होते हैं इससे चन्द्रगुप्त के जानवरों के प्रति लगाव की भी सूचना प्राप्त होती है। पुनः उसने लिखा है कि ''जब सेन्ड्रोकोट्टस (चन्द्रगुप्त मौर्य) सिकन्दर के सेनापतियों के विरुद्ध युद्ध के लिए जा रहा था एक विशालकाय जंगली हाथी स्वयं उसके सामने उपस्थित होकर एक पालतू सिखाये गये हाथी की भॉति चन्द्रगुप्त को अपने पीठ पर बैठा लिया।''[29] इससे इस बात की पुष्टि होती है कि चन्द्रगुप्त मौर्य जंगली जीव–जन्तुओं के प्रति अत्यन्त अनुराग की भावना रखता था। इससे यह भी स्पष्ट होता है कि वह पालतू तथा जंगली दोनों ही जीवों के साथ समान व्यवहार करता था। सेल्युकस द्वारा हुई सन्धि में चन्दगुप्त ने जहॉ सेल्युकस को 500 हाथी उपहार देकर यह प्रदर्शित करने का प्रयास किया कि अधिकतम बड़े जंगली जानवरों का विस्तार विदेशों में भी हो वही उसनें आर्कोशिया (कन्दहार), जेंड्रोसिया (मकरान बलूचिस्तान), एरिया (हेरात) एवं पेरोमिसडाई (हिन्दूकुश पर्वतमाला) जैसे प्राकृतिक समृद्धि से परिपूर्ण भौगोलिक क्षेत्र को प्राप्त किया इससे स्पष्ट होता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य प्राकृतिक क्षेत्रों की महत्ता को बखूबी समझता था। ये क्षेत्र प्राचीन काल में नदियों द्वारा सिंचित प्रदेश था। वी0ए0 स्मिथ ने लिखा है कि ''दो हजार वर्ष पूर्व ही भारत के प्रथम सम्राट ने उस वैज्ञानिक सीमा को प्राप्त कर लिया था।''[30] सिन्धु नदी के आसपास का वह क्षेत्र जिसे आधुनिक पंजाब, पाकिस्तान तथा बलूचिस्तान के रूप में जाना जाता है तथा जिसे बौधायन ने अपने धर्मसूत्र में 'आरट्टो'[31] का देश बताया है उन अरट्टों को महाभारत में पॉच नदियों वाले देश का निवासी कहा गया है। ऐसे नदी, पहाड़ और जंगल तथा उपजाऊ क्षेत्र को अपने अधीन रखने का चन्द्रगुप्त का उद्देश्य निश्चित रूप से प्राकृतिक संपदा को संरक्षित करना ही रहा होगा क्योंकि इस क्षेत्र को विदेशी सैनिकों द्वारा सबसे ज्यादा हानि पहुॅचने का खतरा रहता था। जिससे सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, के साथ–साथ प्राकृतिक क्षति दीर्घकालिक परिणाम देती। इसकी पुष्टि अर्थशास्त्र के उस तथ्य से भी होती है कि जिसमें कहा गया है कि जंगलो में रहनेवाले मृग, गैंडा, भैंसा, मोर तथा मछलियों की हत्या न की जाय यदि यह हत्या किसी राजपरिवार के सदस्य द्वारा की जाती है तो उसे भी दण्डित किया जाना चाहिए।[32] चन्द्रगुप्त मौर्य द्वारा किये गये विशिष्ट कार्यों में यद्यपि गिरिनार के निकट सुदर्शन झील का निर्माण तथा उससे निकाली गयी नहर एवं कुछ विशिष्ट कुओं तालाबों को विशेष रूप इतिहास लेखन में व्याख्यायित किया गया है तथापि आम जन द्वारा किये गये कार्यो को भी देखे जाने की आवश्यकता है क्योंकि कौटिल्य चन्द्रगुप्त मौर्य का प्रधान मन्त्री था जिसके अर्थशास्त्र में यह निर्देश दिया गया है कि आम जन द्वारा क्या कार्य किये जाने चाहिए और यदि किसी व्यक्ति विशेष द्वारा उस निर्देश का उलंघन किया गया तो क्या दण्ड का विधान होना चाहिए। जबकि प्राप्त लिखित साक्ष्यों से यह प्रदर्शित होता है कि आम जन राज्य द्वारा दिये गये निर्देशों का कड़ाई से पालन करते थे। यह भी तथ्य सामने आता है कि यदि आम जनता द्वारा किसी बंजर भूमि को उपजाऊ बनाया जाता था या सिंचाई इत्यादि की व्यवस्था की जाती थी तो उन्हें राज्य द्वारा पुरस्कृत भी किया जाता था तथा राज्य द्वारा विशेष सहायता भी प्रदान की जाती थी। दामोदर धर्मानन्द कौशाम्बी का मानना है कि मौर्य काल में हर प्रकार की सिंचाई की व्यवस्था आश्चर्यजनक रूप से उच्चस्तर की थी जिससे राज्य के सीधे नियंत्रण की 'सीता भूमि' का सर्वाधिक उपयोग होता था।[33]

ऐसा प्रतीत होता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य के समय प्रकृति के पंचतत्वों में 'भूमितत्व' एवं 'जलतत्व' को विशेष महत्ता प्रदान की गयी थी क्योंकि भूमि को 'सीता' की संज्ञा से विभूषित किया गया है जबकि सीता को हमारे धार्मिक ग्रन्थों में मॉ का दर्जा दिया गया है तथा सीता को पृथ्वी से उत्पन्न एवं पुनः उसी में समाहित होने का उल्लेख प्राप्त होता है। इससे स्पष्ट होता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य भूमि के रहस्यों को राजा होते हुए भी भली–भॉति समझता था। पुनः उसने पशुओं हेतु चारागाह के लिए निर्देश देते हुए कहा है कि ऐसे स्थानों पर भी चारागाह स्थापित किये जायॅ जहॉ घने जंगल हो तथा उन चारागाहों की सुरक्षा हेतु कर्मचारियों की नियुक्ति की जाय[34] कर्मचारियों की उस जंगल के हिंसक जानवरों से सुरक्षा हेतु खाइयॉ एवं गुफाओं का निर्माण किया जाय। किन्तु हिंसक जानवरों की हत्या न किये जाने का निर्देश इस बात को इंगित करता है कि उसे पारिस्थिकी एवं पर्यावरण का विशेष ध्यान था। राजा द्वारा यह भी निर्देश दिया गया था कि जिस जगह पानी का अभाव हो वहॉ पक्के कुअें, पक्के तालाब, फूल तथा फलों के बगीचे और प्याऊॅ आदि की व्यवस्था की जाय।[35]

बिन्दुसार

बिन्दुसार, चन्द्रगुप्त के आदर्शो और तरीकों का समर्थक था।[36] यद्यपि उसके किसी विशिष्ट कार्य का साक्ष्य नहीं मिलता है तथापि उसने चन्द्रगुप्त द्वारा दिये गये सिद्धान्तों का पूर्णतः पालन किया। और साथ–ही–साथ अपने सुयोग्य पुत्र अशोक का मार्ग प्रसस्त किया। यूनानी लेखकों ने उसका नाम 'अमित्रोकेडीज'[37] बतलाया है। फ्लीट महोदय ने विन्दुसार को अमित्रखाद कहा है जिसका अर्थ शत्रुओं का हरण करने वाला होता है। भारतीय धर्मग्रन्थों में अमित्रखाद 'इन्द्र' की उपाधि थी जो प्राकृतिक तत्वों के नियंता थे जिसके कारण उन्हें 'देवराज' अर्थात् समस्त ब्रह्माण्ड के देवाताओं का राजा कहा गया है। अमित्रखाद शब्द पतंजलि के महाभाष्य में भी आया है।[38] ऐतरेय ब्राह्मण में राजाओं की एक प्रसिद्ध उपाधि

'अमित्रानामहंता' थी, तथा महाभारत में राजाओं एवं योद्धाओं के लिए अमित्रघाती का प्रयोग बार–बार हुआ है।[39] अतः बिन्दुसार के इस नाम अर्थ प्रकृति प्रदत्त तत्वों के शत्रुओं को हरण करने वाले राजा के रूप में भी स्वीकार किया जा सकता है। पुनः दिव्यावदान का यह साक्ष्य की तक्षशिला के दुष्ट अमात्यों के विरूद्ध जनता का विद्रोह और बिन्दुसार द्वारा उन अमात्यों का संहार यह संकेत देता है कि बिन्दुसार जन कल्याण के प्रति अत्यधिक सजग एवं सक्रिय था न कि साम्राज्य के कुछ विशिष्ट पदाधिकारियों के प्रति। स्टीन के अनुसार 'खस प्रदेश' जो कस्तवार से वितस्ता (झेलम) की घाटी तक फैला था उस प्राकृतिक प्रदेश पर भी बिन्दुसार का अधिकार था यद्यपि इसका राजनीतिक कारण हो सकता है तथापि इसके प्राकृतिक एवं भौगोलिक कारणों को नजरंदाज नहीं किया जा सकता है। जिससे इस बात की पुष्टि होती है कि बिन्दुसार नदी–घाटी क्षेत्र के प्राकृतिक संसाधनों से भली–भॉति परिचित था जहॉ सिंचाई हेतु जल संसाधन प्रचुर मात्रा में उपलब्ध थे। तीसरी शताब्दी के एथीनियस ने कहा है कि ''भारतीय राजा अमिट्रोकेटीज (बिन्दुसार) ने सीरिया के राजा अन्टियोकस को मीठी शराब (अंगूर की शराब) और सूखी अंजीर और एक दार्शनिक भेजने के लिए लिखा था।''[40] मुखर्जी महोदय ने कहा है कि ''बिन्दुसार एक ऐश्वर्यप्रिय और विलासी नरेश था।''[41] किन्तु इतने विशाल साम्राज्य के सम्राट द्वारा बहुमूल्य धातु, विलासिता की सामग्री एवं सौदर्य प्रसाधन सामग्री के स्थान पर प्रकृति प्रदत्त सूखी अंजीर एवं मीठी शराब (अंगूर की शराब) मॅगाया जाना जहॉ उसके प्राकृतिक वस्तुओं के प्रति संवेदना व लगाव का संकेत देता है वहीं दार्शनिक इस बात का प्रमाण प्रस्तुत करता है कि वह गहन विचारशीलता का अनुयायी था। जो गहन प्राकृतिक रहस्यों को जानना चाहता था। दिव्यावदान से ज्ञात होता है कि उसकी सभा में आजीवक परिब्राजक पिंगलवत्स को बहुत सम्मान प्राप्त था।[42] अशोक ने अपने सातवें स्तम्भ अभिलेख में लिखा है कि ''बहुत समय व्यतीत हुआ, जो राजा हुए वे ऐसा चाहते थे कि किस प्रकार जन में धर्म वृद्धि हो''[43] अशोक से पूर्व के राजाओं में बिन्दुसार को भी शामिल किया गया होगा। यहॉ धर्म वृद्धि का अर्थ जन कल्याण एवं प्रकृति प्रदत्त समस्त जीव–जन्तुओं की रक्षा एवं कल्याण से लगाया जा सकता है।

अशोक

सम्राट अशोक की गणना विश्व के महानतम् सम्राटों में की जाती है। उसके शासन काल में सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं कला के क्षेत्र में अत्यन्त बृद्धि हुई जो एक महान साम्राज्य के निर्माण एवं विस्तार के लिए प्रारम्भ से ही आवश्यक माना जाता रहा है। किन्तु उसकी महानता का प्रमुख कारण राजतंत्रात्मक व्यवस्था होते हुए भी 'जीवो और जीने दो' के नैतिक नियम की नीति की स्थापना को माना जा सकता है जिसमें नैतिकता, जन कल्याण, प्रकृति प्रदत्त तत्वों की सुरक्षा, सफल राजतंत्रात्मक व्यावस्था में भी अहिंसा का पालन, पर्यावरण की सुरक्षा के प्रति विशेष ध्यान, छोटे–बड़े समस्त जीव–जन्तुओं की सुरक्षा, नदी, पहाड़, वन–उपवन, वृक्ष, झाड़ी, जंगल तथा प्रकृति के पॉचों तत्वों की सुरक्षा एवं व्यवस्था शामिल था। जिसकी गॅूज जन–जन में देश–विदेश तक व्याप्त थी। सम्राट अशोक का सातवॉ स्तम्भ लेख (दिल्ली–टोपरा) उसके समस्त अभिलेखों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना जाता है जो अशोक के मूल विचारों का सार कहा जा सकता है इस लेख यह तथ्य उभरकर आता है कि मौर्यकाल के पूर्ववर्ती राजाओं द्वारा यद्यपि धर्म–वृद्धि (पर्यावरण संरक्षण) हेतु महत्वपूर्ण प्रयास किये गये थे किन्तु वे इस क्षेत्र में पूर्णतः सफल नहीं हो पाये जिसके कारण अशोक द्वारा विशेष रूप से इसके लिए कार्य करना पड़ा। इस विशिष्ट कार्य हेतु अशोक ने जिस नैतिक नियम की स्थापना की उसे 'धम्म' नाम दिया और कहा; धर्म उत्तम है किन्तु अपने द्वितीय स्तम्भ लेख में स्वयं कहता है कि ''कियं चु धम्मे''। अर्थात् धम्म क्या है? पुनः दूसरे एवं सातवें स्तम्भ लेखों में उत्तर देते हुए कहता है कि ''अपासिनवे बहुकयाने दयादाने सचे सोचये माधवे साधवे च।''[44] अर्थात् कम–से–कम पाप सर्वाधिक कल्याण, दया, दान, सत्य और सौच (पवित्रता), द्विपदों, चतुष्पदों, पक्षियों, जलचर प्राणियों, मेरे द्वारा विविध अनुग्रह–प्राण एवं दक्षिणा तक किये गये अन्य भी बहुत से कल्याण मेरे द्वारा किये गये। मेरे द्वारा यह धर्मलिपि इसलिए लिखवायी गयी है कि लोग इसका अनुशरण करें और यह व्यवस्था चिरस्थिर हो। प्रस्तुत लेख में पर्यावरण एवं पारिस्तिकी के सम्पूर्ण तत्वों को समाहित किया गया है यथा–मानव जगत, पशु जगत, पक्षी जगत, जल जगत, अर्थात् आकाश, पाताल एवं पृथ्वी तीनों लोक के कल्याण की बात अशोक द्वारा कही गयी है। इसके अतिरिक्त सार्वजनिक हित के कार्यों में उसने सड़कों पर छायादार वृक्ष लगवाने, आध–आध कोस पर कुऍ खुदवाने, पौशाला आदि स्थापित करने का उल्लेख उसने इस लेख में किया है। महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि अशोक द्वारा स्थापित शिलालेख, स्तम्भलेख एवं लघु शिलालेखों की स्थापना के समय भी प्रकृति एवं पर्यावरण का विशेष ध्यान रखा गया था। इनकी स्थापना नदी, पर्वत, आम जन के रास्ते आदि को ध्यान में रखकर किया गया था क्योंकि एक भी लेख रेगिस्तानी क्षेत्र में नहीं प्राप्त होते हैं साथ ही इस बात का भी ध्यान रखा गया था कि ये ऐसे स्थानों पर स्थापित किये जायॅ जहॉ से ये सूचना अधिकतम लोगों तक पहुॅच सके और इससे अधिकतम लोग लाभान्वित हो सकें। अशोक द्वारा धर्ममहामात्रों की नियुक्ति इस तथ्य को पुष्ट करता है कि उसके द्वारा पर्यावरण की सुरक्षा एवं जन कल्याण हेतु बनाये गये नियम एवं सिद्धान्त आम जन तक पहुॅचकर व्यवहार में लागू हो सके न कि सिद्धान्त सिर्फ सिद्धान्त बनकर रह जाय।

अशोक कालीन अभिलेखों से मौर्य कालीन लोगों की पर्यावरण के प्रति संचेतना का स्पष्ट साक्ष्य प्राप्त होता है। इससे पूर्व यदि वैदिक कालीन ग्रन्थों के निर्देशों को नजरंदाज कर दिया जाय तो अन्यत्र कहीं भी पर्यावरण के प्रति ऐसी संचेतना का साक्ष्य हमें राजतंत्रात्मक शासन प्रणाली में नहीं प्राप्त होती है जहॉ प्रत्यक्ष रूप से राजा द्वारा आम जनता के लिए पालन करने का निर्देश दिया गया हो। मौर्य कालीन कलाकृतियों में भी जिस प्राकृतिक वातावरण का भाव प्रकट किया गया है उससे तत्कालीन कलाकारों की पर्यावरण के प्रति सकारात्मक संवेदना का रूप स्पष्टतः परिलक्षित होता है। ऐसा प्रतीत होता है कि पर्यावरण के प्रति कलाकार की अनुभूति अत्यन्त विलक्षण थी जिसे उन्होंने चित्रकला, मूर्तिकला एवं स्थापत्य कला के माध्यम से सजीवता प्रदान कर आम जन तक को महसूस कराने का सफल प्रयास किया है। इस प्रकार मौर्य कालीन कला का स्वरूप काल्पनिक न होकर प्राकृतिक कहा जा सकता है। मार्शल ने कहा है कि '' सिंह स्तम्भ में शिल्पी ने सिंहों की फूली नसों एवं मांसपेशियों में तनाव उकेरकर जिस प्राकृतिक स्वरूप को अपना लक्ष्य बनाया है इससे स्पष्ट होता है कि उन्होंने प्रकृति के द्वारा ही ये संवेदनाएं अर्जित की हैं।''[45] अशोक के स्तम्भों पर सिंह, वृषभ, गज और अश्व जैसे पशुओं और पद्म का अंकन प्रतीकात्मक रूप से महात्मा बुद्ध के जीवन की घटनाओं की अभिव्यक्ति से सम्बन्धित है किन्तु प्रत्यक्ष रूप में यह प्रकृति एवं पर्यावरण का अनूठा उदाहरण प्रस्तुत करता है जिसके माध्यम से आम जन भी उनके महत्व को समझ सकें। आज भी ये भारतीय संस्कृति में किसी न किसी देवता के वाहन के रूप में पूजे जाते हैं।

भारत के विभिन्न भागों से अशोक के अभिलेख प्राप्त हुए हैं जिनकी भाषा प्राकृत, ब्राह्मी, खरोष्ठी, अरामाइक एवं ग्रीक है। संभवतः क्षेत्र विशेष के लोगों की भाषा को ध्यान में रखकर ही सम्राट द्वारा उस

भाषा में ही लेख उत्कीर्ण कराया गया जिस भाषा को अधिकतम वहॉ के क्षेत्रीय लोगों द्वारा प्रयोग की जाती थी जिससे समस्त जनता को इसका पूर्णतः लाभ प्राप्त हो सके। ये अभिलेख सम्राट अशोक के महान वैचारिकता का साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं और साम्राज्य निर्माण की एक नई विधा के आरम्भ को दर्शाते हैं जिसमे एक महान सम्राट एवं महान योद्धा अहिंसा का वरण करने के बावजूद भी अपने राज्य के साथ पड़ोसी राज्यों में भी सम्माननीय बन गया जबकि राजतंत्रात्मक व्यवस्था में अहिंसा के स्थान पर हिंसा को महत्व दिया जाता था। गिरनार से प्राप्त द्वितीय शिलालेख[46] में कहा गया है कि '' देवों के प्रियदर्शी राजा द्वारा मनुष्य तथा पशु दोनों के चिकित्सा की व्यवस्था की गयी तथा मनुष्य उपयोगी एवं पशु उपयोगी जो भी औषधियॉ जहॉ नहीं हैं वहॉ लाये गये और रोपे गये, मार्गो पर पशुओं और मनुष्यों के प्रतिभोग के लिए कूप खुदवाये गये और वृक्ष लगाये गये।'' इस प्रकार अशोक सर्वजनहिताय एवं सर्वजन सुखाय की भावना से प्रेरित होकर समस्त प्राणियों के संरक्षण द्वारा पर्यावरण संरक्षण के अनूठे उदाहरण को प्रस्तुत किया है। गिरनार के चतुर्थ शिलालेख[47] में अशोक ने धर्माचरण पर बल देते हुए प्राणियों का अनालम्भ (अहत्या), भूतों की अविहिंसा, संबंधियों के प्रति उचित व्यवहार एवं श्रमणों के प्रति उचित बर्ताव का निर्देश दिया है। पंचम स्तम्भ अभिलेख[48] (दिल्ली–टोपरा) के माध्यम से देवों का प्रियदर्शी राजा इस प्रकार कहता है– जात उत्पन्न (जीव) अवध्य कर दिये गये हैं यथा– शुक(तोता), सारिका (मैना), अरुण, चक्रवाक, हंस, नन्दीमुख, गेलाट, जतुका (चमगादड़), अम्बाकपीलिक (रानी–चींटी), दुलि(कछुवी), अनस्थिकमत्स्य, संकुजमत्स्य, कमठ, शल्य, पर्णशश, सुमर, सण्डक, ओकपिण्ड, पलासाद, श्वेत कपोत, ग्रामकपोत तथा सब चतुष्पद जो परिभोग को नही प्राप्त होते हैं न खाये जायॅ। गर्भिणी या पयस्विनी बकरी, भेड़ी, शूकरी तथा उनके छः माह के बच्चे अबध्य हैं। बधि–कुक्कुट(मुर्गे) को नहीं काटना चाहिए, जीव सहित भूसे को नहीं जलाना चाहिए, अनर्थ के लिए या विहिंसा के लिए वनों को न जलाना चाहिए। इस प्रकार इस लेख के माध्यम से सम्राट अशोक ने जीव हिंसा को रोककर यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि पर्यावरण संतुलन हेतु प्रत्येक जीव–जन्तु का अपना महत्व होता है। कोई भी जीव महत्वहीन नहीं होता है चाहे वह छोटा हो या बड़ा। इसी कारण अशोक ने एक–एक जीव–जन्तुओं एवं पशु–पक्षियों का वर्णन किया है जिन पर हिंसा नहीं करनी चाहिए।

मौर्य कालीन शासकों के साथ–ही–साथ तत्कालीन समाज भी पर्यावरण के प्रति अत्यन्त संवेदनशील था। इसका साक्ष्य हमें कौटिल्य के अर्थशास्त्र से स्पष्टतः प्राप्त होता है। मौर्य कालीन शासन प्रणाली एक अत्यन्त केन्द्रियकृत शासन प्रणाली थी जिसमें प्रकृति प्रदत्त उपहारों यथा– पेड़–पौधे, वनस्पति, जंगल, जीव–जन्तु के दुरूपयोग एवं हानि पहुॅचानें पर भी राज्य द्वारा दण्ड का विधान किया गया था। ऐसी व्यवस्था वैदिक काल के पश्चात् पहली बार मौर्यकालीन राजतन्त्रात्मक व्यवस्था में देखने को मिलती है। ज्ञातव्य है कि चन्द्रगुप्त मौर्य जैन धर्म में विश्वास करता था और बिन्दुसार आजीवक था जबकि सम्राट अशोक बौद्ध मतानुआयी था। तीनों विचार धाराएं अहिंसा में विश्वास करती हैं तथा अहिंसा पर्यावरण संरक्षण में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है इससे यह स्पष्ट होता है कि मौर्यकालीन महान शासकों द्वारा पर्यावरण को ध्यान में रखकर ही किसी भी कार्य का संपादन किया जाता था।

सिंचाई व्यवस्था

मौर्य काल में प्राकृतिक तथा कृत्रिम दोनों प्रकार के सिंचाई के साधनों का उपयोग किया जाता था। उस समय आम जन द्वारा चार प्रकार के सिंचाई के साधनों का प्रयोग किया जाता था जैसे–हाथ द्वारा सिंचाई, कन्धे पर लादकर ले जाये गये जल द्वारा सिंचाई, नलों द्वारा सिंचाई और नदी, स्रोतों, झीलों तथा कुओं के पानी द्वारा सिंचाई।[49] ऐसा लगता है कि तत्कालीन लोग वर्षा जल के नापने की व्यवस्था से परिचित थे क्योंकि उद्धरण आया है कि हिमालय की तराई (हैमन्य) में सबसे अधिक वर्षा होती थी, अवन्ति में औसत वर्षा होती थी, और मरुस्थलों (जांगल) में सबसे कम वर्षा होती थी। शक् संवत् 72 (150 ई0) के रूद्रदामन प्रथम के जूनागढ़ अभिलेख से ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त मौर्य के सौराष्ट्र प्रान्त के प्रान्तपति वैश्य पुष्यगुप्त नें काठियावाड़ क्षेत्र की सिंचाई के लिए गिरिनार की सुदर्शन झील के पानी के उपयोग के उद्देश्य से एक सुदृढ़ बॉध बनवाया।[50] सम्राट अशोक के समय इसी प्रान्त के गवर्नर तुशाष्प ने इस बॉध से सिंचाई हेतु नालियॉ निकलवाकर इसे और अधिक उपयोगी बनाया।[51] मौर्य प्रशासन में 'कुप्याध्यक्ष'[52] वन संरक्षण विभाग का प्रमुख अधिकारी था। इसके द्वारा ऐसे वृक्ष मर्मज्ञ कर्मचारियों की नियुक्ति की जाती थी जो वृक्षों के प्रत्येक भाग यथा–जड़, तना, शाखा, पत्ती, फूल और फल आदि की विशिष्ट जानकारी रखते हों। ये इस बात से बखूबी परिचित थे कि वृक्ष के किसी तने को किस प्रकार काटा जाय जिससे उस वृक्ष के अन्य भाग को क्षति न पहुॅचे। इससे यह स्पष्ट होता है कि विशिष्ट जन से लेकर सामान्य जन तक के लोगों में इस बात का ज्ञान था कि पर्यावरण संरक्षण जीवन का अभिन्न अंग है। अर्थात विना शुद्ध एवं संतुलित वातावरण एवं पर्यावरण के जीवन सम्भव नहीं है।

उपसंहार

मेगस्थनीज के कथनों एवं कौटिल्य के अर्थशास्त्र तथा तत्कालीन लिखित अन्य साक्ष्य द्वारा यह जानकारी प्राप्त होती है कि मौर्य शासकों की सार्वजनिक हित के कार्यों में विशेष रूचि थी क्योंकि मौर्य युगीन राजा सड़कों, नहरों, तालाबों, बांधों, स्वास्थ्यरक्षा, चिकित्सालय आदि के लिए राज्य की आय का हिस्सा खर्च करते थे। सिंचाई के अनेक साधन, मनुष्य एवं पशुओं के साथ–साथ अन्य जीव–जन्तुओं की चिकित्सा व्यवस्था इस बात की जानकारी प्रदान करती है कि मौर्य शासक प्राकृतिक तत्वों के प्रति अत्यन्त संवेदनशील थे। कौटिल्य ने लिखा है कि ऐसे जलाशय बनवाये जायॅ जिनमें सभी ऋतुओं एवं मौसमों में जल रहता हो और यदि उनमें हर समय जल न रहता हो तो ऐसी व्यवस्था की जाय कि अन्यत्र से उसमें जल लाया जा सके। यदि आम जन स्वयं ऐसी व्यवस्था करे तो उन्हें भूमि, मार्ग, वृक्ष और उपकरण आदि राज्य द्वारा प्रदान कर उनके प्रति अनुग्रह प्रदर्शित किया जाय। इससे यह स्पष्ट होता है कि आम जन भी ऐसे कार्यो के प्रति अत्यन्त सजग एवं सक्रिय थे जिससे पारिस्थितिकी एवं पर्यावरण को संतुलित एवं व्यवस्थित किया जा सके क्योंकि राज्य द्वारा प्रदान की गयी प्रोत्साहन की नीति आम जन पर सकारात्क प्रभाव डालती है। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में जिस प्रकार के नियमों एवं सिद्धान्तों का विवरण प्राप्त होता है उसके आधार पर यदि कौटिल्य के अर्थशास्त्र को मौर्य काल का संविधान कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। इस प्रकार कहा जा सकता है कि मौर्य काल में पर्यावरण संरक्षण का जो स्वरूप प्राप्त होता है वह आज तक हमारी संस्कृति में विद्यामान है और उसका अनुशरण प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से किया जा रहा है। मौर्य कालीन सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक, एवं कला आदि समस्त क्षेत्रों में तत्कालीन लोगों द्वारा किये गये क्रिया–कलापों में पर्यावरण के प्रति संचेतना स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। किन्तु यह विचारणीय प्रश्न है कि क्या मौर्य कालीन शासकों द्वारा अपनायी गयी अहिंसा की नीति मौर्य साम्राज्य के विनास का कारण बनी।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. डॉ0 हरिनारायण दूबे, भारत की प्रारम्भिक संस्कृतियां एवं सभ्यताएं,शारदा पुस्तक भवन इलाहाबाद–2005। पृष्ठ–7।
2. वही,पृष्ठ–8।
3. वही।
4. नित्यानन्द मिश्र, शिवचरण पाण्डेय, पर्यावरण संस्कृति प्रदूषण एवं संरक्षण, श्री अल्मोड़ा बुक डिपो, अल्मोड़ा–1998। पृष्ठ–15।
5. कृष्ण मूर्ति गुप्ता, गंगा (एक प्राकृतिक सांस्कृतिक धरोहर), हिमालय सेवा संघ–1991। पृष्ठ–61।
6. वही,।
7. वही,।
8. वही, पृष्ठ–63।
9. प्रो0 भागचन्द्र जैन भाष्कर, जैन संस्कृति कोष : जैन आध्यात्मिक एवं दार्शनिक चेतना द्वितीय खण्ड, कला प्रकाशन बी0एच0यू0 वाराणसी–2002। पृष्ठ–20।
10. वही, पृष्ठ–23।
11. वही।
12. डॉ0 भिक्षु धर्म रक्षित ,धम्म पद, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली–1983। पृष्ठ–79।
13. वही, पृष्ठ–85।
14. के0टी0एस0 सराओ, प्राचीन भारतीय बौद्ध धर्म : उद्भव, स्वरूप और पतन, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय दिल्ली–2004। पृष्ठ–70।
15. वाचस्पति गैरोला, कौटिलीय अर्थशास्त्रम्, चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी–2003। 2/18/1 पृष्ठ–82।
16. वही, उपनिपातप्रतीकारः। प्रकरण–78 अध्याय–3, पृष्ठ–356।
17. वही,।
18. वही,।
19. वही,।
20. दिनेश चन्द्र, प्राचीन भारतीय अभिलेख : ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार–2007। पृष्ठ–14।
21. अर्थशास्त्र, पूर्वोक्त।
22. दिनेश चन्द्र, प्राचीन भारतीय अभिलेख : ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार–2007। पृष्ठ–6।
23. वाचस्पति गैरोला, कौटिलीय अर्थशास्त्रम्, चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी–2003। दुर्भिक्षे राजा बीजभक्तोपग्रहं कृत्वाऽनुग्रहं कुर्यात।
24. राधा कुमुद मुखर्जी, चन्द्रगुप्त मौर्य और उसका काल, राज कमल प्रकाशन नई दिल्ली–1990। पृष्ठ–101।
25. वही,।
26. रमेश चन्द्र मजूमदार, प्राचीन भारत ,मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली–2002। पृष्ठ–83।
27. वही,।
28. सत्यकेतु विद्यालंकार, मौर्य साम्राज्य का इतिहास, श्री सरस्वती सदन नई दिल्ली–2005। पृष्ठ–139।
29. वही, पृष्ठ–140।
30. वही, पृष्ठ–151।
31. राधा कुमुद मुखर्जी, चन्द्रगुप्त मौर्य और उसका काल, राज कमल प्रकाशन नई दिल्ली –1990। पृष्ठ–38।
32. वाचस्पति गैरोला, कौटिलीय अर्थशास्त्रम्, चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी–2003। पृष्ठ–205।
33. डी0डी0 कौशाम्बी,प्राचीन भारत की संस्कृति और सभ्यता, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली–1990। पृष्ठ–191।
34. अर्थशास्त्र, पूर्वोक्त। पृष्ठ–239।
35. वही, पृष्ठ–240।
36. के0ए0 नीलकण्ठ शास्त्री, नन्द–मौर्य युगीन भारत, मोतीलाल बनारसी दास दिल्ली–2000। पृष्ठ–185।
37. वही,
38. वही,पृष्ठ–186।
39. वही,
40. वही, पृष्ठ–188।
41. श्रीराम गोयल, नन्द–मौर्य साम्राज्य का इतिहास, कुसुमांजलि प्रकाशन मेरठ–1992। पृष्ठ–220।
42. वही, पृष्ठ–222।
43. डॉ0 परमेश्वरी लाल गुप्त, प्राचीन भारत के प्रमुख अभिलेख, खण्ड–1, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी–2007।
44. वही।
45. वासुदेव शरण अग्रवाल, भारतीय कला, पृथिवी प्रकाशन वाराणसी, पंचम पुर्नमुद्रण–2007। पृष्ठ–116।
46. दिनेश चन्द्र, प्राचीन भारतीय अभिलेख : ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परिप्रेक्ष, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय भारत सरकार–2007। पृष्ठ–10।
47. वही, पृष्ठ–12।
48. वही, पृष्ठ–37।
49. राधा कुमुद मुखर्जी, चन्द्रगुप्त मौर्य और उसका काल, राज कमल प्रकाशन नई दिल्ली–1990। पृष्ठ–131।
50. राजवन्त राव ओम जी उपाध्याय, भारत में कृषि एवं कृषक समुदाय :ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य, प्रतिभा प्रकाशन दिल्ली–2010। पृष्ठ–202।
51. वही।
52. राधा कुमुद मुखर्जी, चन्द्रगुप्त मौर्य और उसका काल, राज कमल प्रकाशन नई दिल्ली–1990। पृष्ठ–138।